North Asian International Research Journal of Multidisciplinary

IRJIF IMPACT FACTOR:6.019

ISSN: 2454-2326 Vol. 6, Issue-10 October -2020

Index Copernicus Value: 58.12 DOI NUMBER: 10.5948/2454-2326.2020.00008.0 Cititation Index

A Peer Reviewed Refereed Journal

शैक्षणिक विकास एवं सामाजिक परिवर्त्तण : मिथिला के संदर्भ मे

डॉ० नरेश राम
स्नातकोत्तर- इतिहास विभाग
ल० ना० मि० विश्वविद्यालय, दरभंगा
ग्रा0 + पो0 – जाले
दरभंगा

सारांश–

पूर्व मध्यकालीन मिथिला में शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र में संवर्धन हुआ। देश–विदेश से विद्वान यहाँ आकर अपने को धन्य समझते थे। यहाँ वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रन्थ, स्मृति ग्रन्थों की रचना अबाध गति से होती रही। छः दर्शन में चार दर्शन के प्रणेता यहीं के दार्शतिक थे। दर्शन, न्यायतंत्र एवं मीमांसा में पारंगत विद्वानों की यहाँ कमी नहीं रही।

लेकिन इन सब के अतिरिक्त विभिन्न कला, संगीत, नृत्य एवं लोक नाट्य की सुदीर्घ परंपरा से मिथिला सर्वदा दुनिया को चकाचौन्ध करती रही है। उन कलाओं में मिथिला की चित्रकला की प्रधानता रही है। फलतः चित्रकला के कारण स्थापत्य कला भी अपनी ऊँचाई को प्राप्त की। युग–युग से मिथिला के प्रत्येक घर की महिलाएँ इस कला में दक्ष रही है। प्रत्येक मांगलिक तथा विभिन्न संस्कारों के अवसर पर इस कला का उपयोग होता रहा है।

मिथिला की संस्कृति एक ऐसा महासागर है जिसमें अनेक संस्कृतियों, सभ्यताओं एवं विचारों की सरिताएँ आकर समाहित हो गयी हैं। सकारात्मक सोच, उदात्त चिंतन, एकात्म-भाव, सदाचार, शिष्टाचार, अनेकता में एकताए विविधता में एकरूपता और सर्वोदयी मंगल कामना मिथिला संस्कृति की अनुपम-विशिष्टता एवं विलक्षणता है।

सामाजिक परिवर्तन

मनुष्य अपने जीवन में एक ही स्थिति में रहते हुए परिवर्तन भी चाहता है। वास्तव में परिवर्तन सुधार के उद्देश्य या विजित राज्यों पर अपना प्रभाव जमाने के उद्देश्य से ही होता है। यह शासक की इच्छा पर ही होता है।

मिथिला की प्राचीन सामाजिक व्यवस्था कार्य विभाजन, आर्थिक समुन्नति और आजीविका की समस्या के समाधान के लिए प्राचीन भारतीय विचारकों की एक दूरदर्शी व्यवस्था थी। समाज के लोगों की योग्यता और कार्य क्षमता को देखकर ही यह सामाजिक व्यवस्था संचालित की गई थी।

ऋग्वेद के दशम मण्डल में इसे प्रकार स्पष्ट किया है-

डस विराट् पुरुष के मुख से ब्रह्मविद् ब्राह्मण की, बाहुओं से शौर्यवान् क्षत्रिय की, उरूभाग से वितरणकर्ता वैश्य की तथा पैरों से श्रमशील शूद्र वर्ण की उत्पत्ति हुई।

समाजिक व्यवस्थापक मनु ने अपनी मनुस्मृति में सामाजिक समुन्नति के लिए चारों वर्णों के कर्तव्यों, अधिकारों और सामाजिक व्यवस्था को सुसंगठित रखने के लिए ऐसी ही व्यवस्था निर्धारित की हुई थी-

१. ब्राह्मणों के कर्तव्य :

''वेदों का अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ करना, दान लेना और दान देना ब्राह्मणों के कर्तव्य थे।''

२. क्षत्रियों के कर्तव्य :

समाज की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, अध्ययन करना, विषयों में आसक्ति न रखना, ये क्षत्रियों के कर्तव्य थे।

३. वैश्यों के कर्तव्य :

पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, अध्ययन करना, व्यापार करना, ब्याज पर धन देना और कृषि करना वैश्यों के कर्तव्य थे।

४. शूद्रों के कर्तव्य :

तीनों वर्णों की सेवा करना शूद्रों का कर्तव्य थे।

इस वर्णव्यवस्था की पुष्टि गीता में भी की गई है- गुण और कर्मों के विभाग से चारों वर्ण मेरे द्वारा ही रचे गये हैं।

मिथिला में चिरकाल तक यही व्यवस्था चलती रही। त्यागमय जीवन और ज्ञान के आधार पर ब्राह्मणों का अधिक सम्मान था। उसके पश्चात् क्षत्रियों का स्थान था। वैसे चारों वर्णों का सामाजिक और आर्थिक समुन्नति में विशेष महत्त्व रहा है।

वास्तव में प्राचीन काल से ही समाज की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए व्यवसाय और कृषि कार्य वैश्यों के ही अधीन रहे हैं।

भारतीय समाज में प्राचीन काल में वर्णव्यवस्था के द्वारा चारों वर्णों को बिना किसी भेदभाव के कर्तव्य पालन की सही शिक्षा दी गयी थी। चारों वर्णों में सामाजिक संगठन के संचालन की अद्‌भुत शक्ति थी, क्योंकि उनमें भेदभाव के विचार नहीं थे, क्योंकि वे एक विराट् पुरूष के अंग थे। ब्राह्मणों की ज्ञानशक्ति, क्षत्रियों की बलशक्ति, वैश्यों की अर्थशक्ति और शूद्रों की श्रमशक्ति से समाज पूर्ण रूप से संगठित था।

कलाकृतियों, विभिन्न प्रकार के उद्योग-धन्धों, कृषि के उत्पादन की वृद्धि, आजीविका के विविध आयामों पर एवं समाज के समुचित विकास में वर्णव्यवस्था प्राचीन भारतीय समाज के लिए एक सही वरदान के रूप में थी। एक वर्ण दूसरे वर्ण के कार्यों से इस प्रकार से परिबद्ध था कि एक-दूसरे को सामाजिक संगठनों के कारण पृथक् नहीं किया जा सकता था। जीवनोपयोगी वस्तुओं को अभाव, आजीविका की समस्या आदि सामाजिक संगठन के कारण किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं था, न कहीं भेदभाव ही था।

शासन व्यवस्था के परिवर्तित होने पर ही समाज में विविध प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती देखी जाती हैं, क्योंकि शासक अपना प्रभाव दिखाता है।

वास्तव में मध्ययुग में हिन्दू समाज में उपेक्षित शूद्रादि इस्लाम धर्म की सामाजिक समानता और शासन परिवर्तत से आकृष्ट होकर इस्लाम धर्म को अपनाने में लग गये थे, जिससे हिन्दुओं की सामाजिक संगठन शक्ति क्षीण होने लगी थी। उसके साथ ही साथ मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति में भी अवनति आने लगी थी, दास प्रथा की वृद्धि हुई। भारतीयों ने भी मुसलमानों के परिधानों और खानपान को भी अपनाना प्रारम्भ कर दिया था। बहुविवाह को भी उसी मध्यकालीन युग में प्रोत्साहन मिला। मध्यकालीन युग के परिवर्तित काल में आर्थिक व्यवस्था, शिक्षा, साहित्य, वास्तु कला, आमोद-प्रमोद के साधनों और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों पर परिवर्तित शासन का प्रभाव पड़ने लगा और हिन्दू समाज की शक्ति क्षीण होने लगी थी। भक्ति आन्दोलन के प्रमुख समाज सुधारक रामानन्द, कबीर, नानक और चैतन्य ने शूद्रों को प्रतिष्ठित स्थान देकर हिन्दू समाज की सुरक्षा करने का सराहनीय कार्य किया।

विभिन्न सामाजिक वर्गों का उदय

मजदूर वर्ग अथवा कारीगर वर्ग :

वास्तव में १७वीं शताब्दी में तकनीकी विकास के कारण एक बहुत ही विशाल मजदूर अथवा कारीगर वर्ग का उदय हुआ। आवश्यकताओं के अनुरूप विभिन्न प्रकार के आविष्कार और विभिन्न प्रकार के कार्य करने वाले कारीगर या काम करने वाला वर्ग भी उत्पन्न होने लगा था।

बाबर ने इस सन्दर्भ में लिखा है कि भारतवर्ष विभिन्न प्रकार के असंख्य कारीगरों का देश है। यह नवीन कारीगर वर्ग पूर्णरूप से कृषि पर ही निर्भर नहीं था, अपितु गाँव के बाहर अन्य कृषि क्षेत्रों से अधिक निकट था।

अकबर के शासनकाल में आजीविका की समस्या के समाधान और आर्थिक विकास के लिए अनेक कारखाने खोले गये। इनके खुलने से अधिक संख्या में कारीगर कार्य करने के लिए आकृष्ट हुए एवं उनमें से कुशल शिल्पियों को वहाँ नियुक्त किया गया और इस प्रकार मजदूर और कारीगर वर्ग का विकास होने लगा।

कृषि में कार्य करने वाले कारीगरों से उद्योग-धन्धों में काम करने वाले कारीगरों की स्थिति बहुत ही अच्छी थी, क्योंकि उनके पास पूरे वर्ष भर काम करने के लिए पूरा काम होता था। इतना सब कुछ हाने पर भी बड़े उद्योगों के न होने से संगठित मजदूरों का कोई समुदाय न था, क्योंकि संघ में सुधार और विकास की अधिक शक्ति होती है।

श्रमिकों का जीवन स्तर :

वस्तुतः मुगलकालीन इस युग में श्रमिकों के रोजगार और आजीविका प्रमुख साधन भवन-निर्माण कार्य ही था। अच्छे श्रमिकों को अच्छा कार्य करने पर प्रोत्साहन भी मिलता था।

कुछ मुगल सम्राट् कला प्रेमी थे और उन्होंने मुगलकाल के कई भव्य स्मारक बनवाये हैं और उन स्मारकों के निर्माण में कुशल श्रमिकों का बहुत बड़ा योगदान रहा होगा। मुख्य रूप से आगरा इस दिशा में श्रमिकों की कार्यकुशलता प्रदर्शन का सबसे बड़ा केन्द्र रहा है। अकबर का मकबरा, फतेहपुर सीकरी आगरे का किला और ताजमहल आदि इसके मुख्य आधार हैं।

ऐसा भी अवगत होता है कि १६वीं शताब्दी में सम्भवतः जनसंख्या की वृद्धि के कारण, मौसम की प्रतिकूलता के कारण कृषि में बाधा पड़ने से भी श्रमिक गाँवों से शहरों में पलायन करने से एक नवीन शहरी मजदूर वर्ग का जन्म हुआ है।

स्त्रियों की दशा :

भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही नारी जाति का अत्यधिक सम्मान रहा है। उन्हें अर्द्धांगिनी और गृहलक्ष्मी माना जाता था और कोई भी धार्मिक कार्य उनके बिना सम्पादित नहीं होता था। श्रीराम ने स्वयं सीता के न रहने पर स्वर्ण की सीता की मूर्ति बनाकर धार्मिक कृत्य पूर्ण किया। गृहस्थी का समस्त कार्यभार उन्हीं पर निर्भर था। वे अपने कार्य में अपने बुद्धिचातुर्य और कार्यकुशलता के कारण पूर्ण स्वतन्त्र थीं, उनके संरक्षण में पुरुषों का हाथ था, किन्तु वे पूर्णरूप से सुखी थीं और परिवार की सच्ची संरक्षिका थीं। माता के ममतापूर्ण स्नेह से ही बालक अपनी सभी प्रकार की शारीरिक, शैक्षणिक और सामाजिक समुन्नति करता था। माता ही बालकों की सच्ची शिक्षिका थी और उसी से बालक मातृभाषा और सही शिक्षा ग्रहण करता था, जो उसके जीवन को उन्नति और नैतिक मूल्यों की ओर अभिमुख करती थी। नारी नर की प्रेरणा और सच्ची सहधर्मिणी थी।

भारतीय समाज में नारियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। मनु ने अपनी मनुस्मृति में नारियों को सम्मान देते हुए इस प्रकार वर्णन किया है–

''जहाँ नारियों का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं, अर्थात् वहाँ समस्त सुख सन्निहित रहता है।''

पूर्वमध्यकाल में शैक्षणिक विकास

उच्च शिक्षा–प्राप्ति के हेतु मिथिला से भी विद्यार्थी सुदूर स्थित तक्षशिला के विश्वविद्यालय में जाया करते थे। राजगृह के प्रसिद्ध चिकित्सक जीवन को आयुर्वेद सम्बन्धी उच्च शिक्षा तक्षशिला विश्वविद्यालय में ही प्राप्त हुई थी। तक्षशिला विश्वविद्यालय सर्वोच्च शिक्षा का केन्द्र था। पर उसके अतिरिक्त विदेह एवं वैशाली जनपदों में भी शिक्षा के केन्द्र थे। ''महावस्तु'' तथा ''बुद्ध चरित्र'' के वर्णानानुसार गौतम बुद्ध ने वैशाली के महाज्ञानी आचार्य आलार के आश्रम में विद्याध्ययन समाप्त कर राजगृह की यात्रा की थी। ''ललित विस्तर'' तथ ''दीघनिकाय'' के सच्चक कुत्त भी उपयर्युक्त कथन का अनुमोदन करता है, कि बुद्धदेव ने अनुप्रिया से चलकर आलार एवं उद्रक के आश्रमों में शिक्षा प्राप्त की, और तब वे मगध आये। आलार और अद्रक दोनों भाई थे, और उनका आश्रम वैशाली जनपद में था।

चांडालों की शिक्षा-प्राप्ति के मार्ग में प्रतिबंध था। जातकों के अध्ययन से पता चलता है कि एक बार उज्जैनी के दो चाण्डाल शिक्षार्थियों ने ब्राह्मण का वेश धारण कर तक्षशिला विश्वविद्यालय में विद्या-प्राप्ति-हेतु प्रवेश किया पर बात खुल गई। परिणमतः वे दोनों ही वहाँ से अविलम्ब बहिष्कृत किये गए।

उन दिनों के प्रसिद्ध विद्या-केन्द्रों में काशी का भी नाम था। उसका स्थान तक्षशिला के बाद था। संभवतः तक्षशिला से शिक्षा-प्राप्त विद्वानों ने वहाँ विद्यादान का आयोजन किया था। वैशाली एवं विदेह से विद्यार्थी काशी भी विद्योपार्जन-हेतु जाते थे। पीछे चलकर विद्या-प्राप्ति के हेतु ब्रह्मचारियों को काशी भेजने की परिपाटी-सी बन गई। आज भी मिथिला के बालक ब्रह्मचारियों के यज्ञोपवीत सत्त्कार के समय जव विद्यारंभ का विषय आता है, तो आचार्य उनसे प्रश्न करते हैं, कि ‘‘कहाँ जाते हो’’? उसका उत्तर मिलता है कि ’’काशी’’। पुनः प्रश्न होता है कि ’’क्यों’’? बालक ब्रह्मचारी जबाव देता है कि ’’विद्योपार्जन के हेतु’’। आचार्य तब कहते हैं कि ’’लौट आओं’’। यहाँ घर पर ही तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध कर दिया जाएगा। ऐसा करना समाज में रूढ़ का रूप धारण कर चुका है, जिसको मिथ्या आचरण मानते हुए भी प्रायः यज्ञोपवित के अवसर पर दुहराया जाता है।

वैशाली एवं विदेह जनपदों में प्रागैतिहासिक काल में वैदिक धर्म का प्रचार था, जिसका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है। ब्राह्मण एवं उपनिषद-युग के पश्चात् ऐतिहासिक काल में गौतमबुद्ध का आविर्भाव वैशाली एवं विदेह के पड़ोस की भूमि नेपाल की तराई के शाक्य-जनपद के कपिल वस्तु नामक स्थान में हुआ। वे वहाँ के इक्ष्वाकु वंशीय शाक्य-अधिपति राजा शुद्धोधन के पुत्र थे (अश्व घोषः बुद्ध चरित्र, प्रथम सर्ग)। जरा-मरण-ग्रस्त संसार के दुःख से त्रस्त वह राजकुमार युवा अवस्था में ही अपने नवजात पुत्र एवं रूपसी स्त्री से विरक्त होकर सत्य एवं मोक्ष की खोज में राजप्रसाद से बाहर निकल पड़ा। उसे घोड़ तपस्या के पश्चात् ज्ञानालेक की प्राप्ति हुई, जिसे उसने संसार के हित के लिए जन- समुदाय में बिखेर दिया। जन-साधारण को नया सुलभ ज्ञान- प्रकाश मिला। जनता उसकी ओर आकृष्ट हुई और बौद्ध दर्शन का प्रचार उनके बीच जोरों से होना आरंभ हुआ। आरंभ में बुद्ध-मार्ग का अवलम्बन केवल विरक्त बौद्ध भिक्षुओं तक ही सीमित रहा, पर पीछे चलकर इसकी जड़ जनसाधारण के बीच जमने लगी। मगध, कोशल, विदेह एवं वैशाली तथा अन्य जनपदों में भी बौद्ध-धर्म का प्रचुर प्रचार हुआ, यद्यपि ब्राह्मण धर्म उन स्थानों

से निर्मूल नहीं हो पाया था। उपनिषद-युग के कठोर ज्ञानवाद के विरूद्ध इसे ''जन-क्रान्ति'' की संज्ञा दी जा सकती है।

जैन धर्म का प्रचार थोड़ा-बहुत पूर्व से ही था। उसके २४वें तथा अंतिम तीर्थकर महावीर का अवतरण वैशाली जनपद में हुआ। बौद्ध एवं जैन दोनों ही धर्मों के फूलने और फलने के लिए वैशाली की भूमि अति उर्वरा साबित हुई। दोनों का ही प्रचार जनसाधारण के बीच सम्यक रूप से हुआ। ब्राह्मण धर्म समाज के कुछ लोगों की संचित एवं सुरक्षित संपति के रूप में रह गया था, क्योंकि जातकों से पता चलता है कि यत्र-तत्र वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान उसकाल में भी हुआ करता था। जनक और याज्ञवल्क्य की भूमि मिथिला में, जहाँ बौद्ध एवं जैन दर्शन का प्रचार कम नहीं हुआ था, वैदिक देवता, इन्द्र, वरूण, प्रजापति, ब्रह्मा, सूर्य एवं अग्नि की पूजा भी जनता के बीच प्रचलित थी।

लिच्छवियों के बिच बौद्ध एवं जैन धर्मों के अनुयायियों की संख्या कम न थी। पर उनमें ब्राह्मण धर्म के मानने और उसके पथ पर चलने वाले भी बहुत थे।

वैदिक संस्कृति की लहर यद्यपि मिथिला में ऋग्वैदिक युग के उत्तर-काल में पहुँची, किन्तु, इसमें सन्देह नहीं कि आध्यात्मिक ज्ञान के क्षेत्र में इसका स्थान शीघ्र अति ऊँचा हो उठा। उपनिषद्काल में विदेह-राज जनक की राजसभा वैदिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार का केन्द्र बन गई थी। मिथिल के राजा जनक एवं ऋषि वाज्ञवल्क्य के ज्ञान-विज्ञान का प्रकाश सम्पूर्ण उत्तर-भारत में फैल चुका था। ब्रह्म-विषयक ज्ञान की प्राप्ति के हेतु आर्य-सभ्यता के केन्द्र कुरू-पांचाल से भी अनेकानेक ऋषि जनक की राजसभा में समय-समय पर आकर उपस्थित होते थे। 'बृहदारण्यक उपनिषद्' तथा कुछ अंशों में 'शतपथब्राह्मण' भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं, कि सारा उत्तर भारत किसी समय उपनिषद् ज्ञान तथा अध्यात्मिक विकास के क्षेत्र में मिथिला के विदेहों के नेतृत्व को स्वीकार करता था। महाभारत भी जनक की अध्यात्म-ज्ञान, उनके पंचशिख, सुलभा तथा अन्यान्यों के साथ हुए ज्ञान विज्ञान सम्बन्धी वार्तालाप तथा शुकदेव के प्रति ज्ञानोपदेश की चर्चा करता है। जनकों के बहुकाल-व्यापी यज्ञों का भी उल्लेख स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है। इन सबों से वह सारांश निकालता है, कि उपनिषद्-युग में वैदिक संस्कृति के विकास,

प्रचार एवं प्रसार में मिथिला का हाथ अत्यधिक था। विदेह-राजसभा में दार्शनिक वाद-विवाद में विचार-स्वातन्त्र्य था। इन कारणों से पश्चातवर्ती-काल में बौद्ध एवं जैन दर्शन जैसे अनात्मवादी विचार का जन्म विदेह-भूमि के आस-पास में हुआ। इस प्रकार आध्यात्मिक जीवन एवं बौद्धिक विकास के क्षेत्र में इसने सम्पूर्ण भारत का नेतृत्व किसी काल में किया था।

निष्कर्ष-

पूर्व मध्यकालीन मिथिला में शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र में सम्वर्द्धन हुआ। देश-विदेशों से विद्वान यहाँ आकर अपने को धन्य समझते थे। यहाँ वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ, स्मृति ग्रंथों की रचना अवाध गति से होती रही। छः दर्शन में चार दर्शन के प्रणेता यहीं के दार्शनिक थे। दर्शन, न्यायतंत्र एवं मीमांसा में पारंगत विद्वानों की यहाँ कमी नही रही।

लेकिन इन सब के अतिरिक्त विभिन्न कला, संगीत, नृत्य एवं लोक नाट्य की सुदीर्घ परम्परा से मिथिला सर्वदा दुनिया को चकाचौंध करती रही है। उन कलाओं में मिथिला की चित्रकला की प्रधानता रही हैं। फलतः चित्रकला के कारण स्थापत्थ कला भी अपनी ऊँचाई को प्राप्त की। युग-युग से मिथिला के प्रत्येक घर की महिलायें इस कला में दक्ष रही है। प्रत्येक मांगलिक तथा विभिन्न संस्कारों के अवसर पर इस कला का उपयोग होता रहा है।

मिथिला की संस्कृति एक ऐसा महासागर है जिसमें अनेक संस्कृतियों, सभ्यताओं एवं विचारों की सरिताएँ आकर समाहित हो गयी हैं। सकारात्मक सोच, उदात्त चिंतन, एकात्म- भाव, सदाचार, शिष्टाचार, अनेकता में एकता, विविधता में एकरूपता और सर्वोदयी मंगलकामना मिथिला संस्कृति की अनुपम - विशिष्टता विलक्षणता हैं।

संस्कृति उन बौद्धिक तथा भौतिक साधनों अथवा उपकरणों का योग है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने **प्राणिशास्त्रीय एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, साथ ही साथ अपने को पर्यावरण के अनुकूल बनाता है।**

संदर्भ ग्रंथ-सूची:-

- राय, पी० सी०, लाइफ ऐंड टाइम्स सी० आर० दास (१९३७)
- हर हाइनेस द महारानी आफ बड़ौदा, आल इंडिया वीमंस एजुकेशनल कांफ्रेंस, १९२७ के अवसर पर, ओ'मिली (संपा०) माडर्न इंडिया ऐंड दि वेस्ट
- ओ'मिली (संपा०) माडर्न इंडिया ऐंड दि वेस्ट
- संगले की रानी, आल इंडिया वीमंस एजुकेशनल कांफ्रेंस, १९२७ के अवसर पर, ओ'मिली(संपा०) माडर्न इंडिया ऐंड दि वेस्ट
- जोन ब्यूकंप, ब्रिटिश इम्पीरियलिज्य इन इंडिया (१९३५)
- गाडगिल, ''डी०आर०दि इंडिस्ट्रियल इबोल्युशन आफ इंडिया इन रीसेंट टाइम्स'' (१९३३) और आर०पी०दत्त, ''इंडिया टुडे (१९४०)
- कार्ल मार्क्स, ''आन इंडिया''
- लास्की, एच०जे० दि राइज ऑफ यूरोपियन बिलरजिल्यज (१९३६) टानी, आर०एच०ए रेलिजन ऐंड द राइज आफ कैपिटजिज्म (१९२६) और स्टालिन, जोजफ, माक्सिज्म ऐंड दि नेशनल ऐंड क्लोनियल क्वेश्चन
- आ० सी० दत्त, इकनामिक हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इंडिया अंडर ब्रिटिश रूल (१९०१)
- आर०पी०दत्त, इंडिया टुडे (१९४०)
- सीतारमैया, पी०, दि हिस्ट्री आफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस
- शेलवंकर, के० एस, प्राब्लम आफ इंडिया (१९४०)
- वाडिया, पी०ए०, ऐंड मर्चेंट, के०ओ० अवर इकनामिक **प्राब्लम**
- **अहमद, जेड०ए० दि अग्रेरियन प्राब्लम इन इंडिया (१९३८)**
- **कांग्रेस अग्रेरियन इनक्वायरी कमेटी रिपोर्ट,**

- **राधाकमल मुखर्जी, लैड प्राब्लमइन इंडिया (१९३३)**
- **राधाकमल मुखर्जी, लैड प्राब्लमइन इंडिया (१९३३)**
- **अहमद, जेड०ए० दि अग्रेरियन प्राब्लम इन इंडिया (१९३८)**
- विश्वेश्वरैया, सर०एम०, प्लैड इकानमी फार इंडिया, **अहमद जेड०ए० दि अग्रेरियन प्राब्लम इन इंडिया (१९३८)**
- कमीशन की रिपोर्ट (१८९२)
- **राधाकमल मुखर्जी, लैड प्राब्लमइन इंडिया (१९३३)**
- इंडियन स्टैच्यूटरी कमीशन की रिपोर्ट, १९३०
- दि फैफिन कमीशन रिपोर्ट, १८८०
- सर एडवर्ड मैकलागन, एम०एल० डार्लिंग, दि सेंट्रल बकिंग इनक्वायरी कमेटी, पी०ज०यामस, एग्रीकल्चरल क्रेडिट डिपार्टमेन्ट, और अन्रू
- **अहमद, जेड०ए० दि अग्रेरियन प्राब्लम इन इंडिया (१९३८),**
- प्राविंशियल बैंकिंग इनक्वायरी की रिपोर्ट